इक्कीसवीं सदी के भारत में विमर्श के विविध परिदृश्य

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

इक्कीसवीं सदी के भारत में विमर्श के विविध परिदृश्य

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

आत्मवृत्त

नाम	:	डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
जन्म तिथि	:	एक जनवरी सन् उन्नीस सौ तिहत्तर (01.01.1973)
सम्प्रति	:	रीडर– हिन्दी विभाग, उ.प्र. विकलांग उद्धार डॉ शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय,लखनऊ
शैक्षणिक योग्यता	:	डी0 फिल0, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
सृजन	:	विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में 1000 (एक हजार) से अधिक लेखों, शोध आलेखों का प्रकाशन एवं सौ से अधिक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनारों में सक्रिय भागीदारी
कृतियाँ		100 से अधिक पुस्तकों का सृजन एवम् सम्पादन भारत में उच्च शिक्षा : कुछ अहम सवाल, कुछ बुनियादी समस्याएँ इक्कीसवीं सदी का भारत : मुद्दे, विकल्प और नीतियाँ इक्कीसवीं सदी का पर्यावरण आन्दोलन : चिन्तन के विविध आयाम भारतीय मुसलमान : दशा एवं दिशा इक्कीसवीं सदी में मुसलमान : चिन्तन एवम् सरोकार, (2 VOLUME SET) नई सहस्राब्दी का महिला सशक्तिकरण (3VOLUME SET) मीडिया विमर्श : उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ वैश्विक धरातल पर आतंकवाद : मानवता के समक्ष गम्भीर खतरा भ्रष्टाचार का वर्तमान परिदृश्य एवं भविष्य की चुनौतियाँ नयी सदी की दहलीज पर भारत : सामाजिक समस्याओं के उभरते क्षितिज
परियोजनायें		दलित चिन्तनः परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य (UGC) स्त्री विमर्शः परम्परा की प्रासंगिकता एवम् सामाजिक परिप्रेक्ष्य अध्ययन (UGC) नई आर्थिक नीति एवं दलितों के समक्ष चुनौतियाँ (UGC) एसोसिएट, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला, हि0 प्र0 इक्कीसवीं सदी में भारत : दशा एवं दिशा (UGC Seminar) Manviki Tatha Samaj Vigyan Me Takniki Sabdavali Ki Upyogita (Commission For Scientific & Technical Terminology, January 2010) The Global Concept of Terrorism and its Effect On The Indian Economy(UGC Seminar)
सम्पादक / सम्पादन		कृतिका, अन्तर्राष्ट्रीय शोध जर्नल दलित चिन्तन एवं परम्परा, इक्कीसवीं सदी में भारत : दशा एवं दिशा
सम्मान / पुरस्कार		राष्ट्रभाषा महासंघ, मुंबई द्वारा विश्व भाषा पर पुरस्कृत, राजभाषा नीक, कलकी, छत्तीसगढ़ के हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य एवं समग्र सृजन हेतु स्व. श्री हरि ठाकुर स्मृति पुरस्कार से सम्मानित, बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर फेलोशिप सम्मान 2006, साहित्य वारिधि मानदोपाधि एवं निराला सम्मान 2008, अमूल्य हिन्दी सेवा के उपलक्ष्य में प. शिवदत्त चतुर्वेदी अलंकरण, दिसम्बर 2011
सम्पर्क सूत्र		हिन्दी विभाग, उ.प्र. विकलांग उद्धार डॉ. शकुन्तला मिश्रा विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226017
दूरभाष एवं ई मेल		09415924888,dr.virendrayadav@gmail.com

₹ 950.00

ISBN 978 93 82302 70 4

alfa Publications
4398/5, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110 002
Phone: 23275092, 23274151
e-mail:alfapublications@yahoo.co.in
alfapublications@gmail.com

अध्याय–2

सामाजिक न्याय के दायरे में गाँधी जी की प्रासंगिकता

डॉ0 गीता यादव
प्रवक्ता –राजनीति विज्ञान विभाग
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर
डॉ0 राजेश कुमार सिंह
प्रवक्ता –राजनीति विज्ञान विभाग
राजा हरपाल सिंह पी.जी. कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर

महात्मा गाँधी जैसा विशाल और विराट व्यक्तित्व सदियों के अन्तराल के बाद किन्तु विशेष समाज में किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है। गाँधीजी का चमत्कारी नेतृत्व, हिमालय जैसा अडिग साहस, गंगा जैसी पवित्र मानसिकता और हिमालय सा बहता हुआ, निर्झर झरने जैसा उनका हृदय, प्रत्येक देश और विदेश के जनमानस को स्पर्श करते हुए झकझोर देता है। उनका विचार था कि युवक आश्चर्यजनक शक्ति का पुंज होता है और उसमें आश्चर्यचकित कर देने वाले कार्य को सम्पादित करने की क्षमता होती है। गाँधीजी आधुनिक युग के सबसे बड़े महापुरुष थे। उस जन देवता, उस महापुरुष, उस महामानव के युग को गाँधी युग के नाम से जाना जाता है, जिस युग का प्रत्येक कण गाँधी जी की सुगन्ध से सुगन्धित था। वे मानव जाति के पथ–प्रदर्शक थे। उन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति को आध्यात्मिक और सामाजिक मूल्यों की, नैतिकता, प्रेम, सहयोग, और स्वतन्त्रता के मूल मन्त्र (बीज) को दिया। उनका यह व्यावहारिक आदर्श जीवन को पल्लवित और पुष्पित करने वाला था जो प्राचीन भारत के ऋषियों द्वारा जलाई गयी मशाल को फिर से प्रज्ज्वलित करने की प्रेरणा देता है।

गाँधीजी के नेतृत्व में ही अटल, अचल–हिमालय जैसी अनाचार, अत्याचार और क्रूरता की प्रतिमूर्ति अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ लगभग मृतप्राय भारतीय समाज पुनः उठ खड़ा हुआ और उस महापुरुष के मानवीय, सांस्कृतिक और चमत्कारिक नेतृत्व की छाया में चलकर स्वतन्त्रता को भारतीयों ने गले लगा लिया। अतः गाँधीजी केवल युग पुरुष ही नहीं, नवयुग के प्रवर्तक युगपुरुष थे। गाँधी नेतृत्व को शब्दों से नहीं बाँधा जा सकता है। विश्वविख्यात आइन्सटीन ने गाँधी की शहादत पर कहा कि "कुछ सौ वर्ष बाद विश्व के लोगों को यह सहसा विश्वास ही नहीं होगा कि गाँधी जैसा हाड़ माँस वाला व्यक्ति इस धरती पर कभी विचरण कर रहा था।" गाँधी ने अपने स्वतन्त्रता सम्बन्धी आन्दोलनों और नीतियों से राष्ट्रीय साहित्यकारों को अद्भुत रूप से जागृत कर दिया था। उसी समय बंकिम बाबू ने "वन्दे मातरम्", जयशंकर प्रसाद ने "प्रबुद्ध शुद्ध भारती", सोहनलाल द्विवेदी ने "हे कोटिरूप हे कोटिनाम", माखनलाल चतुर्वेदी ने "चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ", मैथिलीशरण गुप्त ने "भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती" जैसे विभिन्न देशभक्ति और रोमांचकारी साहित्य का सृजन हुआ।

महात्मा गाँधी आधुनिक युग की एक विलक्षण विभूति है। वे राष्ट्रीय आन्दोलन के सर्वोच्च नेता, शिक्षक तथा संदेशवाहक थे। वे न तो शंकर थे न काण्ट, अपितु सुकरात व बुद्ध के सदृश थे। गाँधीजी (1869–1948) तत्त्वशास्त्र तथा राजनीतिदर्शन के क्षेत्रों में रीतिबद्ध तथा शास्त्रीय ढंग से चिन्तन करने वाले व्यक्ति नहीं, बल्कि एक ऐसे विचारक भी थे जिन्होंने अपने समय के अधिकांश अनुमानों तथा विश्वासों को चुनौती दी थी। उन्होंने अपनी गंभीरतम भावनाओं तथा सत्य के सम्बन्ध में अपनी अत्यधिक निष्ठापूर्ण अनुभूतियों को उद्‌गारों के रूप में व्यक्त किया है। 1908 के बाद गाँधीजी के विचारों में एकता मिलती है अन्तर्विरोध नहीं। उनसे पहले राष्ट्रीय आन्दोलन समाज के कुछ वर्गों तक ही सीमित था, जिसे उन्होंने जन आन्दोलन का रूप दिया। स्वदेशी तथा बहिष्कार के विचार भारत में पहले से ही विकसित व प्रचलित थे, लेकिन गाँधीजी ने उन्हें अहिंसक सत्याग्रह के विचारों से जोड़कर एक विल क्षण अर्थ प्रदान किया था। महात्मा गाँधी ने सदैव अपने को विश्व का नागरिक समझा और उस रूप में अपने कार्यों को अधिक महत्त्व देते हुए सत्य व अहिंसा रूपी शस्त्रों का प्रयोग भारत और दक्षिण अफ्रीका की राजनीति में किया।

गाँधी ने सत्य और अहिंसा के आधार पर रामराज्य की कल्पना की थी। गाँधीजी का रामराज्य वास्तव में सच्चे मानवतावादी शासन–व्यवस्था का प्रतीक है। जिसमें मनुष्य का व्यवहार इतना संतुलित, संयमित एवं आत्मानुशासित होगा कि किसी मशीनी राज्य अर्थात् कानूनी राज्य की आवश्यकता ही नहीं होगी। गाँधी स्वयं मानते थे कि वही राज्य सर्वश्रेष्ठ है जो कम से कम शासन करे और प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन आदर्श समाज के निर्माण के लिए यथोचित रूप से करता रहे। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने विकेन्द्रीकरण की शासन नीति को अपनाना उचित समझा। इसके लिए त्रिस्तरीय शासन व्यवस्था अर्थात ग्राम पंचायत व्यवस्था और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित किया। समाज में शोषण समाप्त करने के लिए गाँधीजी अस्तेय एवं ट्रस्टीशिप के सिद्धान्तों की आवश्यकता पर बल दिया। उनकी यह भी धारणा थी कि ह्रदय परिवर्तन की नीति अपनाकर हम पूँजीपतियों को इस बात के लिए राजी कर सकते हैं कि वे अपनी सम्पत्ति को समाजोपयोगी कार्यों में लगायें। वास्तव में समाजवाद तभी आयेगा जब सामाजिक कार्यकर्ता इसे अपने जीवन में उतार सकें। समान कार्य के लिए समान वितरण की प्रक्रिया ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त द्वारा सम्भव है। टॉलस्टॉय का यह सिद्धान्त 'रोटी के लिए श्रम' का प्रबल समर्थन गाँधी जी किया करते थे अर्थात् प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को पूरा करने के लिए शारीरिक श्रम करना चाहिए। यह सिद्धान्त श्रमिक वर्ग, व्यापारिक वर्ग, पूँजीपति वर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग सभी के लिए समान रूप से लागू होता है। इस सिद्धान्त से जनता आत्मनिर्भर व निर्भीक रहेगी, जिससे शोषण करने वाली सत्ता का विरोध करने की शक्ति उत्पन्न होगी। निष्कर्षतः गाँधी जी सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु विकेन्द्रीकरण, आर्थिक वर्ण–व्यवस्था, अस्तेय, ट्रस्टीशिप, रोटी के लिए श्रम सिद्धान्त, राज्यविहीन समाज के द्वारा आध्यात्मिक लोकतन्त्र स्थापित करना चाहते थे।

इस युग में सामूहिक संहार के शक्तिशाली बाह्य अस्त्रों ने मानवीय व्यवस्था की जड़ें हिला दी थीं। तत्समय गाँधीजी मानवीय मूल्यों का संदेश देते थे। वर्तमान समय के राजनीतिक आदर्श माल्थस, नित्शे और डार्विन के इस सिद्धान्त से निर्धारित हो रहे हैं कि जीवशास्त्रीय नियमों के अनुसार बलशाली की दुर्बलों पर विजय प्राकृतिक और सहज है। जब से सृष्टि की रचना हुई है, तभी से मजबूत कमजोर को दबाता आया है, इसे डार्विन ने

सिद्ध किया है। इसलिए कमजोर को बचाने की कोशिश नाकामयाब नहीं होगी। अतः जहाँ सफलता नहीं मिलती है वहाँ प्रयास करना व्यर्थ है। यही कारण है कि आधुनिक बुद्धिवादी के लिए प्रारम्भ में गाँधी जी के उस संदेश को स्वीकार करना कठिन हो जाता है, किन्तु जिसने उपनिषद, बौद्ध, गीता, स्टोइक, ईसाईयत और आइन्सटीन के ज्ञान की ऊँचाई हासिल नहीं की, उसे कोई मजबूत और कोई कमजोर दिखाई देता है। वास्तव में यह एक भ्रम है जैसे पृथ्वी का चपटा दिखाई देना भ्रम है, जबकि पृथ्वी गोल है। सूरज का पूरब से पश्चिम जाना भ्रम है, जबकि पृथ्वी खुद परिक्रमा कर रही है, डार्विन के इस भ्रम को आइन्सटीन ने दूर किया। अन्त में विजय सत्य की ही होती है, न कि सबसे अधिक बलशाली की जैसा कि महाभारत में वृत्तान्त है। वास्तव में मनुष्य की समस्त शक्तियों का योग निकाला जाये तो सबकी शक्तियाँ बराबर मात्रा में हैं। किन्तु अलग–अलग व्यक्ति के गुणों की मात्रा में समानता नहीं है।

यही कारण है कि सृष्टि अभी तक जीवित है, अन्यथा यदि सशक्त निर्बल को मारकर खा जाता तो इस समय दुनिया में केवल एक सबसे शक्तिशाली आदमी (देश) जिन्दा होता, लेकिन अरबों लोग इस पृथ्वी पर जीवित हैं। अतः डार्विन की खोज अधूरी थी, जिसे आइन्सटीन ने सापेक्षता के सिद्धान्त की खोज कर पूरा किया। प्रश्न यह है कि यदि गरीब को गरीब ही रहना है तो गरीबों की मदद क्यों की जाए। पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण की शक्ति प्रबल है, लेकिन वह आज भी ग्रहों, नक्षत्रों व खगोलीय पिण्डों के गति में संतुलन बनाये रखकर प्रकृति में सामंजस्य स्थापित की है। यही पृथ्वी का स्वभाव व धर्म है। इस तरह गरीब की रक्षा करना कुछ लोगों का जन्मजात धर्म व स्वभाव होता है। इसी प्रकार गाँधी जी ने राजनीति की समस्याओं के संदर्भ में आध्यात्मिक और नैतिक मार्ग का समर्थन किया।

सन् 1893 से 1914 ई0 तक गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका में प्रजातिवाद, साम्राज्यवाद, सम्प्रदायवाद तथा अस्पृश्यता के लिए बहुत कार्य किये। वहाँ उन्होंने श्वेतांगों की जातीय भेदभाव की नीति के विरूद्ध संघर्ष चलाया। कभी–कभी प्रश्न उठता है कि यदि असमानता स्वाभाविक है, तो इसे दूर करना दीवार में सिर मारने जैसा है। फिर ऐसी गलती क्यो की जाए। किन्तु गाँधीजी को इस बात में अपरिमित विश्वास था कि मानव आत्मा में नवजीवन प्राप्त करने की अपार शक्ति है। अतः भगवान ने किसी को बहुत छोटा बनाया

तो किसी को बहुत बड़ा। किसी को गोरा तो किसी को काला। किसी को 100 किलो वजन का बनाया तो किसी को 30 किलो का। अतः सिद्ध है कि लोगों में समानता नहीं है। लेकिन मानव प्राणियों में सभी के पास दो हाथ, एक नाक में दो छिद्र, दो आँख, 32 दाँत, 20 अंगुलियां आदि समानता का प्रतीक है, यही द्वैताद्वैत का दर्शन है। अतः प्रकृति में असमानता के साथ–साथ समानता भी है।

असमानता की सीमा ईश्वर प्रदत्त है। सबसे कम वजन का मनुष्य 30 किलो का, तो सबसे वजनी मनुष्य 300 किलो का। दो फिट से छोटा किसी को नहीं बनाया, 7 फिट से ज्यादा लम्बा किसी को नहीं बनाया। किसी को गोरा बनाया, किन्त इतना नहीं कि सूरज शरमा जाए। किसी को काला तो बनाया लेकिन इतना नहीं कि वह आँख से दिखाई न दे। किसी को बुद्धि दी लेकिन इतनी नहीं कि उसे 'सृष्टि' के क्यों का जवाब मिल जाये। किसी को मन्द बुद्धि का बनाया लेकिन इतना नहीं कि उसे अपनी भूख ही समझ न आये। सूरज को इतनी गर्मी तो दी कि वह बुध ग्रह के जीवन को अपनी ज्वाला से भस्म कर दे, किन्तु इतनी गर्मी नहीं दी कि वह पृथ्वी पर जीवन को नष्ट कर दे।

अतः यह स्पष्ट है कि असमानता तो ईश्वर की नियति है। इसी असमानता को दूर करने के लिए ईश्वर ने समय–समय पर पृथ्वी पर अपने प्रतिनिधि भेजे हैं। यह प्रतिनिधि (प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र) असमानता को दूर भले न कर पाये लेकिन समानता जैसा सामाजिक न्याय बनाने में कामयाब हो सकते हैं। अतः अन्तहीन अमीरी और अन्तहीन गरीबी दोनों भगवान के विरूद्ध हैं, इसलिए संविधान में अमीरी–गरीबी रेखा बनाना परमात्मा की सेवा करना है। महात्मा गाँधी के समाज–दर्शन का अन्तिम उददेश्य यही था कि एक ऐसा समाज बने जिसमें साम्प्रदायिक झगड़ों को भी सैद्धान्तिक, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक आधारों पर दूर किया जा सके। किसी भी सम्प्रदाय के लिए उनमें द्वेष नहीं था। अतः गाँधीजी के सामाजिक दर्शन पर एक ओर परम्परागत हिन्दू धर्म और दर्शन का गहरा प्रभाव है तो दूसरी ओर आधुनिक विश्व में जो समानतावाद और स्वतन्त्रतावाद की लहर व्याप्त हो रही है वह उनकी आधुनिकता का सूचक है।

गाँधी जी नैतिक अर्थ में व्यक्तिवादी थे न कि आर्थिक अर्थ में, अर्थात् आम आदमी को इतनी सहूयित मिलनी चाहिए कि वह इतनी आमदनी का रोज

व्यय कर सके, जिससे वह अपनी रोटी, कपड़ा और मकान का प्रबन्ध कर सके। लोकतन्त्र पारिवारिक भावना पर चलता है, परिवार में सब लोग बराबर हैं। सम्पत्ति और आमदनी पर सबका हिस्सा है, एक वोट का अधिकार सबको दिया जाना चाहिए, यदि सभी बराबर उपभोग नहीं करते तो यह परिवार की फायदे की बात नहीं होगी। जिसको जो जरूरत हो, सहमति से तय कर ले। आम आदमी की मूलभूत आवश्यकता पारिवारिक भावना नहीं है, मालिक मजदूर भावना है, क्योंकि परिवार गरीब है तो आम आदमी को रोटी, कपड़ा और मकान मिलना चाहिए। अगर परिवार अमीर है तो यह मूलभूत आवश्यकता से अधिक मिलनी चाहिए। क्या मिलना चाहिए यह उसके हिस्से को देखकर तय होगा, न कि जीवन की मूल आवश्यकता को देखकर। उदाहरणार्थ किसी परिवार की आमदनी उसके सदस्यों में बराबर बाँट दें, उससे उसकी मूलभूत आवश्यकता पूरी हो अथवा वह इससे विलासित का जीवन ही क्यों न व्यतीत करे।

मूलभूत आवश्यकता देने की सोच लोकतन्त्र विरोधी है। यह कौन निर्धारित करे कि किसी मूलभूत आवश्यकता क्या है, क्योंकि किसी को रोटी, कपड़ा और मकान की हो सकती है तो किसी को साइकिल, कार और हवाई जहाज की हो सकती है अर्थात् यदि विशेष व्यक्ति अपनी मूल आवश्यकता चुन सकता है तो गरीब को भी अपनी मूल आवश्यकता चुनने का अधिकार देना होगा न कि सरकार निर्धारित करेगी। उन्होंने व्यक्ति की गरिमा तथा उसके अन्तःकरण की सम्मानीयता को विशेष महत्त्व दिया। गाँधीजी के नीतिशास्त्र का आधार वह व्यक्ति है, जो नैतिक साधनों से अपने चरित्र का उत्थान करने का प्रयास करता है। उन्होंने वकील, डाक्टर, शिक्षक, मेहतर सभी को समान कार्य के लिए समान वेतन देने के क्रान्तिकारी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और बताया कि यह सभी सामाजिक तथा आर्थिक बुराइयों की रामबाण औषधि है। धन एक जगह संचित करने की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति सभी बुराइयों की जड़ है। इसलिए उन्होंने "धन के विवेकपूर्ण नियमन तथा सामाजिक न्याय" का समर्थन किया।

ट्रस्टीशिप गाँधी अर्थव्यवस्था (सामाजिक न्यायवादी) का आदर्श सिद्धान्त है। गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप का अर्थ इस प्रकार समझाया है – सामाजिक परिस्थिति या स्वयं के पुरुषार्थ से जो कुछ भी मनुष्य को प्राप्त हो, उसे वह समाज की धरोहर समझे। प्रत्येक व्यक्ति के पास जो सम्पत्ति और स्वामित्व

है उसे वह अपने उपभोग के लिए न समझे और न उसे ब्याज, मुनाफा, ठेका या दलाली द्वारा बढ़ाने का प्रयत्न करे। क्योंकि हिंसा के बिना समाज के दूसरे सदस्यों की सहायता और सहयोग के बिना लोग सम्पत्ति का संचय नहीं कर सकते। इसलिए उनको कोई नैतिक अधिकार नहीं है कि वे किसी अंश का भी उपयोग व्यक्तिगत हित और दूसरों के शोषण के लिए करे। जब तक मनुष्य अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के त्याग के लिए तैयार नहीं है, उन्हें सम्पत्ति के प्रति मोह और अपना भाव बदल देना चाहिए तथा सम्पत्ति का उपभोग समाज के हित के लिए करना चाहिए। इसी प्रवृत्ति का नाम ट्रस्टीशिप है जिसमें सम्पत्ति, श्रम, भूमि, बुद्धि, साधन यह सब व्यक्ति के पास संरक्षण के लिए रखा हुआ है।

ट्रस्टीशिप की भावना उच्च चरित्र की निशानी है। अमीरों को चाहिए कि वह किसी भी प्रकार के धन को जनता की धरोहर समझकर खर्च करे। धनिक वर्ग स्वयं को जिस प्रकार गरीबों से अलग व सर्वोच्च बताते हैं उससे उनका भविष्य अंधकारमय होगा। उन्हें धन के घमण्ड में अपने अंदर की इंसानियत को खोना नहीं चाहिए, क्योंकि धन तो उनका है ही नहीं। पूँजीपतियों को यह सोचना चाहिए कि वे पहले मनुष्य हैं उसके बाद सेठ, साहूकार, व्यापारी इत्यादि। जहाँ मनुष्य अपने आपको समाज का सेवक मानेगा, समाज के लिए धन कमायेगा, समाज के कल्याण के लिए उसे खर्च करेगा तब उसके उत्पादन (पूँजी) में शुद्धता आयेगी। उसके साहस और मनोबल में अहिंसात्मक भावना का विकास होगा। यही मनुष्य की सहज वृद्धि तथा सहज प्रेम की भावना है।

इस प्रकार गाँधी जी समाजवादी थे, किन्तु प्रचलित समाजवाद में हिंसा की गंध के विरोधी थे। उनका समाजवाद संपूर्ण मानव समाज में समानता की स्थापना था। जिसमें शक्तिशाली द्वारा अशक्त का शोषण, बड़े राष्ट्र द्वारा छोटे राष्ट्र का शोषण, पुरुष द्वारा नारी का शोषण, किसी सामाजिक प्राविधान द्वारा एक जाति का दूसरी जाति द्वारा शोषण, निषेध है। उनके न्याय का मूलाधार अहिंसा, सत्य और शान्ति तथा प्रेम है। गाँधी जी का यह तत्व ज्ञान भारतीय चिन्तन की अति प्राचीन निधि है, किन्तु यह आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की अनुभूतियों की चेतना में संचारित होकर सर्वथा नवीन संदेश भी है।

गाँधी जी के चिन्तन में सर्वसमाज के स्वरूप की सर्वव्यापकता थी, जिसमें अर्थ, राजनीति, धर्म नीति सभी एक सूत्र में बँधे थे और उनका तात्पर्य एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करना था जिसमें सहजता, एकरूपता, मानवीयता के रूप परिलक्षित हों और असमानता समाप्त हो। गाँधी दर्शन का आधार परिमार्जित होने पर ही अच्छे राष्ट्र एवं देश के निर्माण की संकल्पना की जा सकेगी जिसमें सभी व्यक्तियों को समान अवसर एवं समान अधिकार प्राप्त होंगे। गाँधी समाज में एकता और समानता का मुख्य आधार शिक्षा को मानते थे। शिक्षा व्यक्ति को आन्तरिक रूप से सुन्दर बनाती है, व्यक्ति आन्तरिक रूप से जितना सुन्दर, सात्विक और सुरुचिपूर्ण होगा उसका जीवन और समाज उतना ही सुन्दर होगा। गाँधी जी का विचार है कि यदि एक समान न्याय प्रतिदर्श समाज को देना है तो इन स्वरूपों पर अमल करना होगा, तभी मानवतारूपी समाज का निर्माण होगा और गाँधी जी का सामाजिक न्याय दर्शन क्रियान्वित होगा जिससे एक अच्छे राष्ट्र का निर्माण होगा।

गाँधी जी आर्थिक समानता के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। गाँधी जी आर्थिक विषमता का अन्त करने के पक्ष में थे, लेकिन वे धनिकों से उनका धन बलपूर्वक छीनकर सामाजिक न्याय की स्थापना नहीं करना चाहते थे। गाँधी जी का विचार था कि बल प्रयोग के द्वारा सामाजिक न्याय संभव नहीं है। जो कार्य हिंसा के द्वारा किया जाता अहिंसा के द्वारा उसे नष्ट किया जा सकता है। सत्याग्रह के माध्यम से धनिकों को इस बात के लिए बाध्य किया जा सकता है कि वे अपनी अतिरिक्त सम्पत्ति का त्याग करके मानवता के विकास में अपना सहयोग दे। गाँधी जी पूँजीपतियों के हृदय परिवर्तन के लिए ही ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति उस सम्पत्ति का जो उसके पास है, स्वामी नहीं होगा, अपितु उस सम्पत्ति का प्रयोग समाज के हित में करने के लिए उत्तरदायी होगा। उस सम्पत्ति में से एक मर्यादा के भीतर ही कुछ भाग वह स्वयं के उपयोग में लाने का प्रयास करेगा और शेष भाग को समाज के हित में उपभोग करेगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ट्रस्टीशिप एक व्यापक एवं महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। मनुष्य की आर्थिक शक्ति का प्रयोग सामाजिक हित में कराने का यह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सामाजिक न्याय प्राप्ति का उपयुक्त साधन है।

संदर्भ सूची

1. डॉ0 वी.पी. वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, प्रकाशन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–3, चतुर्थ संस्करण, 1987।
2. विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।
3. वी0आर0 मेहता, राजनीति विज्ञान की प्रमुख अवधारणायें, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।
4. भरत गाँधी, जनोपनिषद, (व्यक्ति व समाज के कष्टों व निदान सूत्रों पर संवाद), 2006, विश्वविद्यालय प्रकाशक, वाराणसी।
5. गाँधी जी हरिजन, गारलैण्ड पब्लिकेशन्स कं0, न्यूयार्क वाल्यूम द्वितीय, 1973।
6. गाँधी जी, मेरे सपनों का भारत, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1969।
7. नवजीवन समाचार पत्र में प्रकाशित गाँधीजी का एक वक्तव्य 22/6/1945 उद्धृत रविन्द्र नाथ मुखर्जी सामाजिक विचारधारा, सरस्वती सदन, मंसूरी 1965।
8. युग निर्माण योजना – अक्टूबर 2010।
9. गाँधी : आत्मशुद्धि, पृष्ठ 34–35।
10. हरिजन सेवक : 24.8.1940 पृष्ठ 231–32।
11. डॉ. अमर ज्योति सिंह : महात्मा गाँधी और भारत, द्वितीय संस्करण 1998।

❑❑❑

अध्याय–3

भिखारी ठाकुरः सृजनकर्म की लोकधर्मिता के लोकनायक

धनंजय सिंह

फेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,

राष्ट्रपति निवास, शिमला–171005

किसी भी रचनाकर्म की लोकधर्मिता इस बात पर निर्भर करती है कि वह रचनाकार अपनी स्थानीयता से कितना प्रेम करता है? अपने युग की लोक वेदनाओं को कितना महसूस करता है? उसकी दृष्टि में बड़ी वेदनाएँ कौन–सी हैं? लोकचिंताओं की जड़ वह कहाँ खोजता है और उनके प्रति वह कितना सचेत होता है? उन लोकचिंताओं के समाधन के लिए अपने सृजनशील कर्म में कैसा स्वप्न देखता है और इसके लिए वह किस तरह के साधनों का उपयोग करता है? उनके परिष्करण हेतु कहाँ से प्रेरणा या ऊर्जा प्राप्त करता है और अपने सृजनकर्म में अपने जीवानानुभव को कितना अभिव्यक्त करता है? भिखारी ठाकुर के सृजनकर्म की लोकधर्मिता को इन्हीं प्रश्नों के केन्द्र में रखकर रामझा जा सकता है। भिखारी ठाकुर का परिचय यह है कि औपनिवेशिक और स्वातंत्रयोत्तर हिन्दुस्तान में (सन् 1887–1971) भोजपुरी के वे एक ऐसे रचनाकार थे, जिनका सारा जीवन, सृजनात्मक साहित्य और उनकी रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ अपनी प्रकृति में लोकधर्मिता के आवरण में रची–बसी थीं। उनका जीवन लोक से शुरू होता है और लोक को ही समर्पित भी होता है– चाहे गाँव हो या शहर। उसी भोजपुरी समाज में उनकी अपनी जो चिंता रही, वह लोकचिंता बन गयी। उस चिंता से मुक्ति के लिए भिखारी ठाकुर ने अपने लोकसंस्कारों, लोकमूल्यों की स्थापना के लिए रचनात्मक संघर्ष किया। इस रचनात्मक संघर्ष के जरिये वे अपने समय व समाज के सबसे बड़े चहेता बन गये।